

## अथर्ववेदकी महत्ता और उसकी समसामयिकता

(अनन्तश्रीविभूषित द्वारकाशारदापीठाधीश्वर जगद्गुरु शंकराचार्य स्वामी श्रीस्वरूपानन्द सरस्वतीजी महाराज )

मन्त्रदृष्टा ऋषियोंकी ऋतम्भराप्रज्ञा एवं श्रुतिपरम्पराके द्वारा मुनियोंकी तपःपूत भूमिमें संचित तथा सुरक्षित मन्त्रब्राह्मणात्मक ज्ञानराशिका नाम वेद है। आपस्तम्बत्रौत्सूत्रमें वेदका लक्षण बताते हुए कहा गया है कि—

मन्त्रब्राह्मणयोर्वेदनामधेयम् ।

चिन्तन-पद्धतिके वैविध्य, ज्ञानमयी भौगोलिकताके विस्तार, असंख्य आश्रम-व्यवस्था, उपभाषाओंकी बहुविधाता एवं चिन्तनात्मक स्वातन्त्र्यके कारण वेदकी असंख्य शाखाओंका होना स्वभाविक था। कहा जाता है कि भगवान् वेदव्यासने वेदको चार भागोंमें विभक्त कर दिया था, जिसके कारण उनका नाम 'वेदव्यास' पड़ा और वेदने ऋक्, यजुः, साम एवं अथर्वके रूपमें चार स्वरूप धारण किया। ऋग्वेदमें स्तुति, यजुर्वेदमें यज्ञ, सामवेदमें संगीत तथा अथर्ववेदमें आयुर्वेद, अर्थशास्त्र, राष्ट्रिय संगठन तथा देशप्रेमके चिन्तनका प्राधान्य है। वैसे दुनियाके इस सर्वप्राचीन वाङ्मयने ही संसारके सभी लोगोंको शिक्षा, संस्कृति, सभ्यता एवं मानवताका सर्वप्रथम पाठ पढ़ाया था। मनुस्मृतिकार कहते हैं कि—

एतद्देशप्रसूतस्य

सकाशादग्रजन्मनः ।

स्वं स्वं चरित्रं शिक्षेन् पृथिव्यां सर्वमानवाः ॥

(मनु० २। २०)

वैदिक महर्षियोंकी दृष्टि मूलतः आध्यात्मिक है। स्तुति, यज्ञ तथा संगीत हो अथवा जीवसेवार्थ लोकहित-हेतु विभिन्न साधनाएँ सबका लक्ष्य मात्र अध्यात्म-साधना, मोक्षप्राप्ति एवं ईश्वर-साक्षात्कार है। यह साहित्य समानरूपसे सभी लोगोंको स्वस्थ, सुखी, कल्याणमय, निर्भय, प्रसन्न, संतुष्ट तथा समृद्ध बनने-बनानेकी कामनासे आपूरित पवित्र संकल्पोंका समुच्चयात्मक ज्ञाननिधि है। कहना न होगा कि इसके किसी भी संविभाग—अङ्गपर विचार क्यों न करें, सबका लक्ष्य समान ही दिखायी देगा, क्योंकि उनका मूल स्वरूप एक ही है। उदाहरणार्थ यदि अथर्ववेदको ही लें तो हम देखते हैं कि सामान्यरूपसे इसमें समाज किंवा लोकजीवनकी व्यवस्थासे सम्बद्ध वर्णसामग्री अधिक है अपेक्षाकृत अन्योंके; किंतु लोकहित-साधनाकी यह परम्परा कोरी लौकिक नहीं है, प्रत्युत इसकी लोकोन्मुखता अध्यात्म-चिन्तनकी पृष्ठभूमि है। इसी चिन्तनात्मक अध्यास-सोपानके सहरे चिन्तक पारलौकिकताके चरम बिन्दुको प्राप्त कर सकेगा। यही कारण

है कि अथर्ववेदकी इसी विचार-पद्धतिने इस कालजयी साहित्यको परम लोकप्रिय, उपयोगी एवं मानव-जीवनका अभिन्न अङ्ग बना दिया। जिससे यह सामान्यातिसामान्य व्यक्तिके लिये भी अध्ययन, अवबोध, उपयोग तथा शिक्षाका स्रोत बन गया। इसीलिये आज भी संसारका कोई भी चिन्तक अथर्ववेदकी सार्वजनीन, सार्वकालिक एवं सार्वत्रिक प्रासंगिकताको अस्वीकार नहीं कर सकता। उसमें कहीं लोगोंको बुद्धिमान्, विद्वान्, ज्ञानी और जीवन-दर्शनमें निष्णात होनेका उपदेश दिया गया है तो कहीं पारस्परिक एकता, सौमनस्य, संगठन, बलिष्ठता, उन्नति, संवेश्य राष्ट्र, एकराट् सुधार, विजय, सेवा, शस्त्र-निर्माण, स्वराज्य-शासन, आर्थिक प्रगति तथा मातृभूमिके प्रति असीम प्रेम रखनेका निर्देश भी दिखायी देता है। वनस्पतियोंकी रक्षा, पर्यावरण-सुरक्षा, ओषधि-निर्माण, वर्षा, अचौर्य, क्षमाभाव, पवित्रता, विद्यार्जन, शान्तिस्थापन तथा पशु-पालन आदि इस वेदके ऐसे वर्णविषय हैं, जो—‘काले वर्षतु पर्जन्यः……सर्वे सन्तु निर्भया’ एवं ‘सर्वे भवन्तु सुखिनः…… मा कश्चिद् दुःखभाग् भवेत्’ के आदर्शको मूर्त स्वरूप प्रदान करते हैं। मानव-जीवनके आचार एवं मातृभूमिकी उन्नतिके परस्पर सम्बन्ध देखें—

सत्यं बृहदूतमुग्रं दीक्षा तपो ब्रह्म यज्ञः पृथिवीं धारयन्ति ।

सा नो भूतस्य भव्यस्य पल्युरुं लोकं पृथिवी नः कृणोतु ॥

(अथर्व० १२। १। १)

अर्थात् सत्यपालन, हृदयकी विशालता, सरल आचरण, वीरता, कार्यदक्षता, ठंडी-गरमी आदि द्वन्द्वोंकी सहिष्णुता, ज्ञान-विज्ञान-सम्पन्नता, विद्वानोंका सत्कार—ये गुण मातृभूमिकी रक्षा करते हैं। भूत, वर्तमान और भविष्यतमें हमारा पालन करनेवाली हमारी मातृभूमि हम सभीके लिये अपने लोकको विस्तार दे अर्थात् अपनी सीमा बढ़ाये, जिससे हमारा कार्यक्षेत्र बढ़े। इसका तात्पर्य यह है कि असत्य-भाषण, हृदयकी संकीर्णता, असदाचरण, कायरता, अकर्मण्यता, असहिष्णुता, अज्ञानता, विद्वदपमान एवं आपसी असहयोगसे राष्ट्रकी शक्ति क्षीण हो जाती है, राष्ट्र कमजोर हो जाता है और बादमें उसपर शत्रु अपना आधिपत्य जमा लेते हैं।

मनुजीने कहा है कि उन लोगोंके आयु, विद्या, यश और बल सतत वृद्धिको प्राप्त करते हैं, जो अपने पूज्यों, बड़ोंका अभिवादन एवं सम्मान करते हैं—‘अभिवादनशीलस्य……’। स्मृतिका यह वाक्य-सिद्धान्त श्रुति माना जाता है; क्योंकि स्मृति श्रुत्यनुगमिनी होती है। कालिदासने भी रघुवंशमें उपमानके

तौरपर इस अर्थवत्ताको स्वीकार करते हुए कहा है—

श्रुतेरिवार्थं स्मृतिरन्वगच्छत् ॥

कहनेका तात्पर्य यह है कि जिस देशके नागरिक अपने पूर्वजों या सम्माननीयोंका सम्मान नहीं करते, वहाँके लोगोंकी आयु, सम्पत्ति, कीर्ति, शक्ति और विद्या क्षीणताको प्राप्त हो जाती है। मनुके इस चिन्तनके आशयको अथर्ववेदमें इस प्रकार देखें—जहाँ पूर्वजोंके प्रति असीम आदर देनेको कहा गया है—यस्यां पूर्वे पूर्वजना विचक्रिरे यस्यां देवा असुरानभ्यवर्तयन्। गवामश्वानां वयसश्च विष्णु भगं वर्चः पृथिवी नो दधातु ॥

(अथर्व० १२। १। ५)

जिस मातृभूमिमें हमारे पूर्वजोंने अपूर्व पराक्रम किये, उन्होंने सदाचार, तप और राष्ट्रकी रक्षा की। जहाँ देवोंने असुरोंको पराजित किया, जो गौ, अश्व एवं पक्षियोंका आश्रय-स्थान है, वह मातृभूमि हमें ऐश्वर्य एवं वर्चस्व प्रदान करे।

इस राष्ट्रकी रक्षा वही कर सकता है, जो अपने इतिहास तथा अपनी परम्परापर गर्व करता हो, जिनमें ऐसा भाव नहीं है, उनसे मातृभूमिकी प्रतिष्ठाकी रक्षा भला कैसे सम्भव है; क्योंकि ऐसे स्वाभिमानविहीन नागरिकोंके देशकी गायें एवं अश्वादि अन्यों द्वारा छीन लिये जायेंगी, फलतः उनकी आयु, ज्ञान तथा बल कैसे सुरक्षित रह सकेंगे। इसलिये हम सबमें ऐसा भाव होना चाहिये कि हम सभी एक ही मातृभूमिके पुत्र हैं। इसकी रक्षा हम सभीका दायित्व है—

त्वज्जातास्त्वयि चरन्ति मर्त्यस्त्वं

बिभर्षि द्विपदस्त्वं चतुष्पदः ।

तवेषे पृथिवी पञ्च मानवा येष्यो ज्योतिरमृतं

मर्त्येभ्य उद्यन्सूर्यो रशिमभिरातनोति ॥

(अथर्व० १२। १। ५)

अथर्ववेदमें राष्ट्री देवी, राजाके कर्तव्य, राजाकी स्थिरता, राष्ट्रिय समृद्धि, राज्याभिषेक, राजाका चयन, राजाद्वारा राज्यका पुनःस्थापन, क्षात्र-धर्म, प्रजा-पालन, राष्ट्र-संवर्धन, शत्रु-नाश, पापी-संहार, आनन्द-प्राप्ति तथा युद्धोपकरण-सम्बन्धी लगभग ११२ सूक्तोंका विधान है। ऋषि कहते हैं कि—

‘विजयी होकर, युद्धमें न मरकर और चोटरहित हो मैं अपनी मातृभूमिका अध्यक्ष बनकर अच्छे कार्य करूँगा। (उनकी इच्छा है कि) जो मुझसे ईर्ष्या करता है, जो सेना भेजकर मेरे साथ युद्ध करता है और जो मनसे हमें अपना दास बनाना चाहता है, उन सभीका नाश हो जाय।’

७२६ सूक्तों तथा ५, ९७७ मन्त्रोंवाला यह अथर्ववेद,

जिसमें लगभग २० सूक्त ऋषिवेदके ही हैं, ऐतिहासिक दृष्टिसे अथर्वाङ्गिरस् एवं अङ्गिरस् आदि नामोंसे भी जाना जाता रहा है। इसीलिये इसके ज्ञाताको या ऋषियोंको 'अथर्वन्' तथा 'अथवन्' भी कहते हैं। इन मनीषियोंका मानना है कि राष्ट्रकी प्रोत्त्रति प्रतिभाके बिना असम्भव है अर्थात् यदि देशकी प्रतिभाएँ अपने देशको छोड़कर अन्यत्र जाने लगेंगी तो भारतवर्ष सदा-सदाके लिये विद्युत्के अभावमें बल्ब-जैसा खोखला, निरर्थक, अनुपयोगी एवं निष्फल हो जायगा। यथा—

मेधामहं प्रथमां ब्रह्मण्वर्तीं ब्रह्मजूतमृषिष्टुताम्।  
प्रपीतां ब्रह्मचारिभिर्देवानामवसे हुवे॥

(अथर्व० ६। १०८। २)

अर्थात् श्रेष्ठतायुक्त, ज्ञानियोंसे सेवित, ऋषियोंसे प्रशंसित और ब्रह्मचारियोंद्वारा स्वीकृत मेधाको अपनी रक्षाके लिये बुलाता हूँ; क्योंकि बुद्धि शरीररूपी समूची सृष्टिका मुख्यतम केन्द्र है। इसके बिना अन्य सब व्यर्थ हैं। इसकी वृद्धिके लिये मनकी शक्ति परमावश्यक है।

इसके साथ-साथ ऋषियोंका यह भी कहना है कि परस्पर संगठित होकर रहनेका काम भी बुद्धिमान् व्यक्ति ही कर सकता है और तभी मानव इस संसारमें स्वतन्त्रापूर्वक अपने अस्तित्वकी रक्षा कर सकता है। 'नायमात्मा बलहीनेन लभ्यः०' सिद्धान्तको ये महापुरुष ही अच्छी तरह जानते हैं, इसीलिये वे देवताओंसे सहायता-हेतु प्रार्थना भी करते हैं—कभी सोम-सवितासे तो कभी आदित्यादि देवोंसे। समूचे अथर्ववेदमें सामूहिक जीवनके विकासकी व्यवस्था है। यहाँ किसी स्वार्थपूर्ण व्यक्तिगत उन्नतिको बहुत स्थान नहीं है। एक-दूसरेसे मिल-जुलकर आपसी सौहार्द एवं सहयोगसे कार्य करनेकी सलाह देते हुए तत्त्वदर्शा ऋषि कहते हैं—

अहं गृणामि मनसा मनांसि………।  
मम वशेषु हृदयानि वः कृणोमि………॥

(अथर्व० ६। १४। २)

इसी प्रकार संवेश्य राष्ट्रकी अवधारणाको सुस्पष्ट करते हुए मन्त्रदृष्टाने कहा है कि—

.....अस्मध्यं.....बृहद्राष्ट्रं संवेश्यं दधातु॥

(अथर्व० ३। ८। १)

'संघे शक्तिः युगे युगे' सदृश सिद्धान्तको गतार्थता प्रदान करने-हेतु अथर्ववेदमें अनेक ऐसे शब्द-समुच्चयका

उपयोग किया गया दीखता है, जिन्हें पारिभाषिक तथा व्याख्येय कहनेमें भी कोई संकोच नहीं होता। यथा— 'ज्यायस्वन्तः' (वृद्धोंका सम्मान), 'मा वियौष्ट' (परस्पर लड़ना नहीं), 'सधुराचरन्तः' (एक धुरा अर्थात् एक नेताके नेतृत्वमें कार्य करना), 'सधीचीना:' (मिलकर कार्य करना) और 'संधारयन्तः' (सिद्धिहेतु सभी मिलकर प्रयत्न करें) इत्यादि। इस प्रकार प्रेम, शान्ति, संतोष और सेवाभावसे बलपूर्वक जनहितके कार्य करने चाहिये। इसीलिये यहाँ ब्रह्मयोग, जिष्णुयोग तथा क्षात्रयोग प्रभृतिका विधान किया गया है (अथर्ववेदकी भूमिका भाग ५, पृ० ७)।

स्वतन्त्रताके बिना परतन्त्र व्यक्ति कुछ नहीं कर सकता। अतः यदि स्वतन्त्रताके लिये युद्ध करना पड़े और एतदर्थ शस्त्र-निर्माण भी करना पड़े तो कोई हर्ज नहीं। इसीलिये इस ग्रन्थके मन्त्रोंमें सात प्रकारके स्फोटक अस्त्रोंकी भी चर्चा परिलक्षित होती है, जिनके द्वारा शत्रुराष्ट्रकी जमीन एवं उनके पानीपर आक्रमण किया जा सकता है। हाथसे और आकाशमें भी प्रहार किया जा सकता है। इसी प्रकार यहाँ एक ऐसी भी आक्रमण-विधि वर्णित है, जिससे नदी, तालाब अथवा पेय जलके सभी स्रोत समाप्त किये जा सकते हैं। इसके अतिरिक्त त्रिष्ण्य नामक वज्र तथा अयोमुख, सूचीमुख, विकंकतीमुख, शितपदी और चतुष्पदी इत्यादि अनेकविधि बाणोंकी भी चर्चा प्राप्त होती है। तमसास्त्र और सम्मोहनास्त्रोंद्वारा शत्रुसेनामें अन्धकार फैलाने तथा सभीको चेतनाशून्य कर देनेकी व्यवस्था भी प्राप्त होती है।

अथर्ववेद (३। २४। २)-में सभीके विकास तथा समृद्धिका वर्णन करते हुए कहा गया है—

.....पयस्वतीनामा भरेऽहं सहस्रशः॥

वेदाहं पयस्वनं चकार धान्यं बहु।

अर्थात् मैं रसयुक्त ओषधियोंको हजारों प्रकारसे पोषण देना जानता हूँ। अधिकाधिक धान्य कैसे उत्पन्न हो, इसकी विधि भी जानता हूँ। इसी प्रकार यज्ञ करनेवालोंके घरमें निवास करनेवाले देवोंकी हम सभी उपासना करते हैं; यथा— संभृत्वा नाम यो देवस्तं वयं हवामहे यो यो अयञ्चनो गृहे।

(अथर्व० ३। २४। २)

ब्राह्मण, क्षत्रिय, वैश्य, शूद्र एवं निषाद—इन पाँचों वर्गोंके लोगोंको मिलकर उपासना करनेका विधान, मधुर भाषण (पयस्वान् मामकं वचः) अच्छी खेती, आत्मशुद्धि और दुष्कालके लिये धान्य-संग्रह, प्रजाकी रक्षा तथा दान—

ये अथर्ववेदके प्रधान उद्देश्य हैं। इसीलिये ऋषि कहते हैं—

शतहस्त समाहर सहस्रहस्त सं किर।

(अथर्व० ३। २४।५)

अथर्ववेदीय मन्त्रोंमें वीर पुत्रोंकी माँको स्मरण करते हुए बताया गया है कि वस्तुतः शूर पुत्रोंकी माँ ही धन्यवाद और प्रशंसाकी पात्र है, क्योंकि उसीका पुत्र आदर्श देशका निर्माण कर सकता है और वही भूमिको अर्थसम्पन्न, गौरवपूर्ण, सुसंस्कृत एवं सर्वतोभावेन स्वस्थ बना सकता है—

हुवे देवीमदितिं शूरपुत्रां० (अथर्व० ३। ८।२)

ऐसी देवीके पुत्र देवोंको भी वशमें कर लेते हैं तथा राष्ट्रिय भावनासे भावित होते हैं। वे न स्वयं दीन होते हैं और न राष्ट्रको दीन बनाने देते हैं। ऐसे ही लोगोंके लिये कहा गया है—

कुलं पवित्रं जननी कृतार्था……।

अथर्ववेदमें जहाँ ऋषियोंने समूचे त्रैलोक्यके प्राणियोंके लिये जलकी कामना की है, वहीं वाणिज्य, धनप्राप्ति, चन्द्रमा एवं पृथिवीकी गतिका भी उल्लेख किया है; क्योंकि जनहित-हेतु अर्थकी चिन्ता उन्हें सतत बनी रहती है। उनका मानना है कि व्यापारसे धन होता है। इसीलिये उन्होंने इन्द्रको वरिणीक कहा है—

इन्द्रमहं वरिणं चोदयामि स न ऐतु पुरएता नो अस्तु।

नुदन्नरातिं परिपन्थिनं मृगं स ईशानो धनदा अस्तु महाम्॥

(अथर्व० ३। १५।१)

अर्थात् मैं वरिणीक इन्द्रको प्रेरित करता हूँ। वे हमारी ओर आयें। वेद-विरुद्ध मार्गपर चलकर लूट-मारवाले-पाशवी आचरण करनेवाले शत्रुको नष्ट करें और वे मेरे लिये धन देनेवाले बनें।

इसके अतिरिक्त परस्पर मैत्री-स्थापन, बन्धनसे मुक्ति, अग्निकी ऊर्ध्वर्गति, ब्राह्मणधर्मका आदेश, शापका प्रभाव-विनाश, हृदय और पाण्डुरोगकी चिकित्सा, वानस्पतिक ओषधि (८।७), कुष्ठैषधि (५।४-५, ६।१५), अपामार्गी ओषधि (४।१७-१९, ७।६५), पृथिवीपर्णी (२।२५), लाक्षा (५।५), शमी (६।३०), सूर्योक्तिरणचिकित्सा (६।५२, ७।१०७), मणिबन्धन (१०।६), शंखमणि (४।१०), प्रतिसरमणि (८।५), शरीर-रचना (११।८), अंजन

(४।९), ब्रह्मचर्य (११।५), ब्रह्मौदन (११।१), स्वर्ग एवं ओदन (१२।२), अमावास्या, पूर्णिमा, विराट् अन्न, प्रथम वस्त्र-परिधान, कालयज्ञ, संगठन-महायज्ञ, मधुविद्या, युद्ध-नीति, युद्ध-रीति, युद्धकी तैयारी, मातृभूमिके गीत, विराट्-ब्रह्मज्ञान, विराट्, राजाका चयन (३।४), राजा बनानेवाले, राजाके कर्तव्य, उन्नतिके छः केन्द्र, अभ्युदयकी प्राप्ति, कर्म और विजय (७।५०), विजयी स्त्रीका पराक्रम, पापमोचन, द्यावापृथिवी, दुष्टोंके लक्षण, दण्ड-विधान, आदर्श राजा, संरक्षक, कर, राजाके गुण एवं राजाके शिक्षक आदिका विवेचन तथा जीवनोपयोगी असंख्य सूक्तियोंका प्रयोग अथर्ववेदकी वे विशेषताएँ हैं, जो न केवल इसकी महत्त्वाका प्रतिपादन करती हैं, प्रत्युत इसकी प्रासंगिकताको दिनानुदिन बढ़ाती भी जा रही हैं। कालका अखण्ड प्रवाह ज्यों-ज्यों आगे बढ़ता जा रहा है, जिसमें रोगोंकी असाध्यता, पर्यावरणका संकट, राष्ट्रिय अस्थिरता, आपराधिक बाहुल्य, आपसी वैमनस्य, आदर्श आचरणका अभाव तथा ढेर सारी वैयक्तिक, सामाजिक, सांस्कृतिक किंवा राष्ट्रिय समस्याएँ मानवताको अपने विकराल तथा क्रूर पंजेसे अपने जबड़ोंमें दबोचती जा रही हैं, उत्तरोत्तर प्रतिदिन भय, अविश्वास, धोखा, अर्धम एवं अनैतिकताका वातावरण विश्वको प्रदूषित करता जा रहा है, त्यों-त्यों इस अन्धकारमय परिवेशको सर्वविध प्रकाश प्रदान करनेके लिये प्रदीप-रूप अथर्ववेदकी उपयोगिता बढ़ती जा रही है; क्योंकि इतिहासकी अविरल धारामें जब-जब ऐसी समस्याएँ आयी हैं, तब-तब सनातन परम्पराके अक्षुण्ण निधिभूत अनादि वेदमन्त्र सतत उनका समाधान करते रहे हैं तथा करते भी रहेंगे। वेदभगवान् सनातन सत्य हैं तथा सूर्य-चन्द्रकी भाँति वे स्वयंके लिये भी प्रमाण हैं। इसलिये इनकी प्रामाणिकता और प्रासंगिकता शाश्वत है। आइये पुनः-पुनः ऋषियोंकी वाणीका स्मरण करते हुए विश्व-कल्याणकी कामना करें—

तमसो मा ज्योतिर्गमय। असतो मा सद्गमय।

मृत्योर्माऽमृतं गमय।

॥ ३० शान्तिः शान्तिः शान्तिः ॥